Cosmos Multidisciplinary Research E-Journal
Online Available at www.cmrj.in
Recognized International Peer Reviewed Journal
Impact Factor 5.69
ISSN No. 2456-1665

आत्मकथा में बाह्य व अंतरंग आत्मप्रकाशन में संकोच और सन्देश

डॉ. विनि विकास ढोमणे
सहायक प्राध्यापक एवं हिंदी विभाग प्रमुख
जे. एम. पटेल कला, वाणिज्य व विज्ञान महाविद्यालय,
भंडारा (महाराष्ट्र)

सामाजिक दायित्व बोध की दृष्टि से विनम्रतापूर्वक आत्मकथाकार जब लिखता है तो वह एक संदेश बन जाता हैं। आत्मप्रकाशन की इस रचनात्मकता में जीवन में दृष्यमान घटनाक्रम तो जुड़े रहते ही हैं, किंतु इनका उसकी अंतरंगता में जो प्रभाव अंकित होता है, उसका उद्‌घाटन सशक्त वातावरण की सृष्टि करने में सहायक सिद्ध होता हैं।

आत्मकथा दुनिया के किसी एक लौकिक जीवन की कहानी हैं। इसमें व्यक्ति जीवन से संबंधित घटनाओं, प्रसंगों, भावनाओं, क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं और अगणित अनुभवों का समावेश हुआ करता हैं। लेकिन इन सबको श्रृंखला में गुंफित किया जाता हैं और इस बात का ध्यान रखा जाता हैं कि जो प्रसंग, क्रियाएँ-प्रतिक्रियायें परिणामकारक हैं, उन्हें विस्तार दिया जाय। यह विस्तार अभिव्यक्तिकरण में रूपांतरित होता हैं। इस स्थिति में लेखक के लिये यह महत्वपूर्ण हो जाता हैं कि वह एक विशिष्ट रुप ढाँचे का निर्माण कर लें जिसकी फ्रेम में उसके अनुभव अपने पूर्ण प्रभावी रुप में उभर सके। अमृता प्रीतमने अपने अनुभव साझा करते हुए कहा कि "सोचती हूँ आज यह जो कुछ अपने मन के भीतर का कागजों पर रखकर दिखा रही हूँ। यह केवल उनके लिये है जो संसार की परम्पराओं और कठिनाईयों और उदासियों को दरवाजे के बाहर बिठाकर, मन के सच को जीने का साहस कर सकते हैं....।१ अमृता प्रीतम का यह कथन उनकी आंतरिकता की वह अभिव्यक्ति हैं जो सृजन कर्म में रेखांकित करने के लिए साहस की आवश्यकता होती हैं।

बहुत-सी बातें ऐसी होती हैं कि उन्हें लिखने के लिए आत्म-संघर्ष करना पड़ता हैं। प्रकट करने में आत्मग्लानि का भाव उत्पन्न हो जाता हैं। कभी-कभी बहुत असमंजस में होते है कि क्या कहें और कैसे कहें या कहें तो अपने भावों को कैसे व्यक्त करें? जैसे अब्राहम काउली ने लिखा था-"अपने बारे में खुद लिखना मुश्किल भी हैं और दिलचस्प भी, क्योंकि अपनी बुराई या निन्दा लिखना खुद हमें बुरा मालूम होता हैं और अगर अपनी तारीफ करें तो पाठकों को उसे सुनना नागवार मालूम होता हैं।"२ आत्मप्रकाशन बड़ा कठिन कार्य हैं, स्वभाविक है, बाह्य सृजन के साथ अंतर की सृजनशीलता यथार्थ बोध से प्रकट होनी है तो उसका प्रभाव किसी भी रुप में हो सकता हैं। हरिवंश राय बच्चन कहते हैं- "जीवन

के सत्य और शब्द के सत्य में कोई साम्य नहीं हैं, और जीवन की दृष्टि से शब्दों का सत्य एक बहुत बड़ा, लेकिन बहुत सुन्दर झूठ हैं। जो चीज रक्त से लिखी जाती हैं, वह स्याही से लिखी जा सकती हैं। जो काम हमारी शिराएँ, हमारी मांस-पेशियाँ करती हैं? और हृदय और मस्तिष्क के फलक पर जो मर्मस्पर्शी और मर्मबंधी स्पंदन होते हैं, क्या उन्हें कोरे कागजों पर फैलाया जा सकता है? नहीं।" अभिव्यक्ति की यह कठिनाई बच्चनजी ने अपने इस कथा के माध्यम से यह बताना चाहते हैं कि लेखक का जीवन कितना ही प्रेरणादायी क्यों न हो लेकिन आंतरिक अनूभूतियों का प्रकटीकरण एक दुष्कर कार्य हैं।

अंतर- बाह्य की द्वन्दात्मक स्थिति आत्मकथाकार के सम्मुख बनी रहती हैं। बच्चनजी हो या महावीर प्रसाद द्विवेदी इस प्रकार की उहापोह आत्मप्रकाशन की सृजनात्मकता में दृष्टिगोचर होती हैं - "मैं क्या हूँ, यह तो प्रत्यक्ष ही हैं। परन्तु मैं क्या था, इस विषय का ज्ञान मेरे मित्रों और कृपालु हितैषियों को बहुत ही कम है। उन्होंने मुझे अनेक पत्र लिखे हैं, अनेक उलाहने दिये हैं, अनेक प्रणयानुरोध किये है। वे चाहते हैं कि मैं अपनी जीवन-कथा अपने ही मुँह से कह डालूँ। पर पूर्ण-रूप से उनकी आज्ञा का पालन करने की शक्ति मुझमें नहीं। अपनी कथा कहते मुझे संकोच भी बहुत होता हैं। उसमें कुछ तत्व भी तो नहीं। उससे कोई कुछ सीख भी तो नहीं सकता।"३ कुछ तत्व की उपस्थिति में ही आत्मकथाकार अपनी बात कहना चाहता हैं, जिससे समाज को कोई सन्देश मिल सके। यशपाल जैसे क्रांतिकारी भी कुछ इसी प्रकार की भूमिका रखते है - "इन संस्मरणों के पहले दो भागों से हि.स.प्र. से व्यक्तिगत रूप से संबंधित और परिचित लोगो का संतोष हुआ हैं, इस बात से मैं भी संतुष्ट हूँ। सभी का संतोष हो सकेगा ऐसी आशा न मुझे थी, न हैं। बुद्ध ने भी सर्वजन के संतोष का, सर्वजनहिताय-सर्वजनसुखाय कहने का साहस नहीं किया था।"४ प्रत्येक व्यक्ति पर उसकी युगीन स्थितियों का प्रभाव होता हैं। यशपाल अपने योगदान को 'सर्वजन हिताय' करने का साहस नहीं कर रहे हैं। इसी प्रकार हरीभाऊ उपाध्याय समाज ऋण से मुक्ति के लिए अपना अवदान देना चाहते हैं "यदि जगत को कुछ देने की इच्छा हो भी तो इसलिये कि जगत से बहुत कुछ लिया हैं, व लेते रहते हैं तो उसे देना आना कर्त्तव्य हैं, कर्ज उतारना जरूरी हैं। इसलिये नहीं कि जगत् पर कोई अहसान करना हैं।"५ लेखक में लोकहित की भावना होनी चाहिए। किसी भी प्रकार के अर्न्तद्वन्द की चिंता किये बिना करना चाहिए। इस संबंध में विष्णु प्रभाकर लिखते हैं-

"ढूँढता फिरता हूँ मैं, ए-इकबाल अपने आपको।
आप ही गोया मुसाफिर, आप ही मंजिल हूँ मैं।

दिशाहीन सफर का यह अध्याय लिखने की प्रक्रिया में मन न जाने कैसा न कैसा हो आया। अपने से ही पूँछ लिया क्यों लिखा मैंने यह सब? क्यों फँसा आत्मश्लाघा के चक्रव्यूह में। अपने को जानने के लिये निःसंग, निर्मम दृष्टि चाहिए, क्या यह मेरे पास हैं?"६

कभी-कभी लेखक स्वयं नहीं समझ पाता कि वह अपनी कहानी या संस्मरण पाठकों के सामने क्यों प्रकट कर रहा हैं। डा. देवराज उपाध्याय लिखते हैं- "मैं यह जानता हूँ कि इन संस्मरणों की निरीहता, साधारणता तथा गौरवहीनता, सर्वजन सुलभता, विशिष्ठ -हीनता जनमानस को किसी विशेष

ढंग से प्रभावित नहीं कर सकेगी। तब पाठकों के सामने इन्हें उपस्थित करने तथा उनके हाथों में देने में व्यर्थ की तुक हैं?" ७ इसी प्रकार डॉ. राजेन्द्र प्रसाद लिखते हैं- "इतिहास की दृष्टि से, केवल स्मरण-शक्ति पर निर्भर संस्मरण की भी, कोई विशेष प्रामाणिकता नहीं हो सकती हैं। इन्हीं कारणों से कभी-कभी यह विचार उठता हैं कि मेरा संस्मरण लिखना केवल अहम्यन्यता हैं, इससे दूसरों को कोई लाभ नहीं पहूँच सकता।"८ किन्तु गाँधीजी ने अपने प्रयोगों का पाठको के सम्मुख प्रकट करने की पूर्ण इच्छा व्यक्त की हैं। क्योंकि उनके लिये यह आवश्यक नहीं कि पाठक इसे आजमाते हैं या नहीं, क्योंकि वे स्वयं भी इन प्रयोगो को अंतिम उपाय नहीं कहते। इसलिये लोकहित की भावना की प्रबलता ने उन्हें आत्मबोध को प्रकट करना आवश्यक लगा। उन्होंने लिखा- "पाठकों को अपने दोषों का परिचय मैं पूरा-पूरा कराने की आशा रखता हूँ। क्योंकि मुझे तो सत्य के वैज्ञानिक प्रयोगों का वर्णन करना हैं। यह दिखाने की कि मैं कैसा अच्छा हूँ। मुझे तिल-मात्र इच्छा नहीं हैं।"९ लेखकों के सामने हमेशा अन्तर्द्वन्द होता रहता है की क्या कँरु क्या न कँरु क्या निर्णय लू या नहीं लू। आत्मकथाकार हृदय पर पत्थर रख कर निष्पक्ष का धर्म निभाता है। और धीरे धीरे अपनी जिंदगी में आये प्रसंगो, घटनाओं और परिस्थियों के आधार पर लिखना शुरु करते है।

आत्मप्रकाशन लिखते समय लेखकों के सामने सबसे बड़ी समस्या तो यह होती हैं उनके आत्मविश्लेषण में उनसे जुड़े लोगो का भी वर्णन होता हैं। हो सकता हैं, वे इस बात से नाराज हो या उनके दिल को ठेस पहुँचे। लेखक यह कभी नहीं चाहते कि उनके कारण किसी ओर को ठेस पहुँचे। वे आत्मकथा लिखते समय सतत् इस अर्न्तद्वन्द में रहते हैं कि किसके बारे में लिखे न लिखे, लिखे तो कितना लिखे। किन्तु उनकी अपनी कहानी में कुछ घटनायें ऐसी होती हैं, जिसमें हमसफर लोगों के संबंध में लिखे बिना उस घटना का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता। इसलिये ज्यादातर लेखक अपने इस अर्न्तद्वन्द को पाठको के सामने प्रकट करते हैं। विनम्रता से वे अपनी बात को रख देते हैं। किसी के दिल को ठेस पहुँचाना वे नहीं चाहते और समाज के प्रति उनमें क्षमाप्रार्थी भाव भी होता हैं। क्योंकि अपने लिए लिखी गई बात स्वयं तक ही सीमित न रहकर सामाजिक बोध की कारक होती हैं। विष्णु प्रभाकर के अनुसार "क्या हम अपने बारे में लिख रहे होते हैं, तो क्या वह सचमुच अपने ही बारे में होता हैं? क्या वह उन सबके बारे में नहीं होता, जिनके कारण वह 'अपनापन' अस्तित्व में आता हैं? मुझे ऐसा लगता हैं कि वह उन्हीं के बारे में अधिक होता हैं। भले ही हम 'मैं' का प्रयोग करके उसे झुठलाने का प्रयत्न करें। कभी यह जानकर होता हैं, कभी अनजाने पर, पर होता अवश्य हैं।"१०

इस बात के अंर्तद्वंद्व को मोरारजी देसाई ने अभिव्यक्त करते हुए कहा हैं कि "स्मृतियों से लिखी हुई बात से दूसरे आहत होंगे। अतएव आत्मकथा लिखने में भी नहीं पड़ने का विचार मैंने किया था।" ११ कुछ इसी प्रकार की मानसिकता रामकृष्ण बिरला की हैं- "मेरे इस लेखन से किसी को किसी प्रकार की ठेस न पहूँचे। फिर भी, यदि अभाग्यवश, मैं इस प्रयत्न में कहीं पर असफल रह गया हूँ,तो उसके लिये क्षमा-प्रार्थी हूँ।"१२ सुभद्राकुमारी चौहान जैसी व्यक्तित्व भी के विचार यह है कि - "मेरा जीवन चरित्र

छापकर क्या करोंगे? मैं इतनी बड़ी नहीं कि मेरे जीवन पर प्रकाश डाला जाय।"१३ अरविन्द की शिष्या (मीरा) माताजी ने भी बाहरी जीवन की अभिव्यक्ति को महत्व नहीं देती- "मेरे बाहरी जीवन का कुछ भी महत्व नहीं हैं। यह शरीर नहीं चाहता कि उसके बारे में कुछ लिखा या कहा जाय।" मनुष्य के आदर्श की उच्चता कहो या संकोच या भय यह लेखक को आत्मकथा लिखने से रोकता हैं। वियोगी हरि का यह कथन "मुझ जैसो को स्वभावतः सदा संकोच और भय रहा कि कहीं कोई यह न कह बैठे, अच्छा, ये क्षुद्र मानव भी अब 'आत्मकथाकारों' की सूची में अपना नाम लिखाने जा रहे हैं। १४ टालस्टाय जैसे दिग्गज भी "जिस समय मैने अपने दोषों की जरा भी छिपाये बिना सारी बातें सच्ची-सच्ची लिखने का विचार किया, उस समय मैं ऐसी जीवनी से काँप गया। उसी समय मैं बीमार पड़ गया।" १५

आत्मकथा साहित्य वह विधा हैं जो व्यक्ति और समाज की अंतर और बाह्य जगत के संबंधों की विवेचना प्रस्तुत करता हैं। इस दृष्टि से यह जीवन की एक व्याख्या हैं। यह व्याख्या तब तक अधूरी ही कहीं जायेंगी, जब तक अंतर और बाह्य जगत, व्यक्ति और समाज जीवन के बीच समन्वय की स्थिति को स्थापित नहीं किया जायेगा। भगवान दास केला कहते हैं कि जिनमें लिखने की योग्यता हे वे लिखे, जिनमें छापने या प्रचार करने का सामर्थ्य है वे उसमें योग दे। "काका कालेलकर आत्मकथा के लेखन के संबंध में लिखते हैं कि "लेखन बहुत कम हैं। तुकाराम महाराज ने अपने बारे में दस-पाँच अभंग लिखने में भी कितनी अरुचि एवं संकोच प्रकट किया था।" १६

आत्मकथा लेखन के संकोच एवं समस्याओं से बचने के लिये कुछ लोग उम्र के आखिरी पड़ाव पर अपनी आत्मकथा लिखते हैं तथा कुछ लोग तो अपनी आत्मकथा के प्रकाशन की अनुमति उनके मरणोपरान्त ही देते हैं। किन्तु फिर भी अब आत्मकथा की रचना में समस्याओं का प्राधान्य होते हुये भी इसकी संख्या में वृद्धि ही हुई हैं। इसका कारण बताते हुये मोहन राकेश लिखते हैं कि "आत्म को कथ्य की अपेक्षा ही नहीं, क्योंकि आत्म शाश्वत हैं, और कथ्य वह तो रोज बदल सकता हैं .... इसलिये आज इस समय हमारे आत्म द्वारा जो कुछ लिखा जा रहा हैं, वह भी कल तक गलत हो सकता हैं....।१७ विष्णु प्रभाकर ने ठीक ही लिखा -

"तो यह कहानी सुनाने के लिये मैं यहाँ न होता ।
क्या करूँ जिन्दा हूँ लिखना पड़ेगा हाल।
क्या मुख्तसर-सा जवाब होता कि मर गया।"१८

आत्मप्रकाशन सबसे अधिक आत्मकथा , संस्मरण, डायरी आदि साहित्य में ही होता है। जिसमें आत्मकथा व्यक्ति का वह अन्तः साक्ष्य है जो उसकी सम्पूर्ण जीवन यात्रा का प्रामाणिक दस्तावेज करता है। आत्मप्रकाशन का अवगाहन करने पर यह भली-भांति स्पष्ट हो जाता है कि राष्ट्रीय जीवन में विकास की दिशा किस प्रकार की है। जीवन के जिस पक्ष का उद्घाटन इन आत्मकथाओं में हुआ है। यदि उनका सही तौर पर विवेचन किया जाय तो हमारे सामाजिक जीवन की अनेक, विद्रुपताओं और

विसंगतियों पर अंकुश लगाने की एक सकारात्मक पहल सहज संभव है। धार्मिक विकृतियाँ तथा धर्म के नाम पर कट्टरपंथी जड़ता एकात्मता बोध को किस प्रकार से नष्ट-भ्रष्ट कर रही है। यह समझ लेने पर उस जड़ता को तोड़ने के लिये प्रबुध्दजन तथा कलमकार सही दिशा बोध दे सकते हैं। उदाहरण स्वरूप 1968 में प्रकाशित, आबिद अली की आत्मकथा 'मजदूर से मिनिस्टर तक' का जिक्र किया जा सकता है। सहज रम्य हिन्दुस्तानी में लिखी गई यह आत्मकथा एक ऐसे लेखक की संघर्ष चेतना की मिसाल बन जाती है जो पिता के निधन के बाद मजदूरी करके जीवन यापन करता है। गांधीजी के आह्वान पर नौकरी को तिलांजलि देकर स्वतन्त्रता संघर्ष तथा अपनी लम्बी व्यापार यात्राओं के माध्यम से विविध क्षेत्रों के भ्रमण का एक अनुभव तथा स्वातन्त्र्योत्तर काल में राजनैतिक क्षितिज पर भी केन्द्रीय मंत्री मण्डल में भी जनसेवा हेतु क्रियाशीलता इत्यादि विलक्षण घटनाक्रम इस आत्मकथा को कुछ नये तेवर दे देता है। मूल्यों की दृष्टि से तो इसमें जहां जीवन से दो-दो हाथ करने की प्रेरणा है वहीं हिन्दू मुस्लिम एकता का रचनात्मक संदेश भी है। मजदूर से मंत्री तक की यात्राये, श्रम के प्रति आस्था भाव का सृजन करने में मददगार सिद्ध होती है। इसी प्रकार बच्चन जी की आत्मकथा के तीनों खण्ड परिवारिकता, तथा सामाजिकता की महत्वपूर्ण मूल्यवत्ता समाज के सामने रख देते है। सामाजिक टूटन की आज की अवस्था में यह सब मूल्यवान है। साहित्य संबंधी तथा गहरी संवेदनाओं से जुड़े हुये उनके अनुभव जीवन मूल्य निर्वाह में अहम भूमिका रखते है। शिकार, खेती तथा संगीत की रसास्वादन वृत्ति वृंदावनलाल वर्मा के साहित्य की विशिष्टता है। यह यायावरी मूल्यों के साथ ही एक व्यापक सौन्दर्य दृष्टि देने में सक्षम है। राजनैतिक उतार चढ़ाव का दस्तावेज मोरारजी देसाई की 'मेरा जीवन वृतांत' है जो किसी भी राष्ट्र के इतिहास बोध का संवाहक होता है। मजेदारी तो ये है कि एक ओर जहां कूटनीतिक घटनाक्रमों का उल्लेख है वहीं दूसरी ओर प्राकृतिक चिकित्सा संबंधी इनका लगाव प्रकृति के साथ जुड़ाव की, हमारी सौन्दर्यमयी उपयोगी दृष्टि भी स्पष्ट कर देता है।

पारिवारिक संस्कारों में रहकर भी स्वाधीनता की अलख जगाने वाली सेठ गोविन्ददास की आत्मकथा स्वाधीनता संघर्ष से स्वातन्त्र्योत्तर प्रथम आम चुनाव की एक विहंगम प्रस्तुति है। पारिवारिक सामाजिक तथा राजनैतिक मूल्यों के कितपय प्रसंग इस आत्मकथा की विशिष्टता है। राजेन्द्र प्रसाद का ऋषितुल्य व्यक्तित्व एवं सकारात्मक अभिव्यक्ति आत्मकथा की विशिष्टता है। धार्मिकता, पारिवारिकता तथा ग्रामीण परिवेश के जीवन मूल्यों को एक राजनीतिक ताने बाने के साथ प्रस्तुत करने का कौशल्य इस आत्मकथा की विशिष्टता है। इसी प्रकार यशपाल के तीन खण्ड़ों में प्रकाशित सिंहावलोकन क्रांतिकारियों की सोच उनकी वैचारिकता तथा संकल्प शक्ति के साथ उनके जीवन के मूल्यों का ऐतिहासिक विवेचन हमारे सामने रख देना है। राष्ट्रीय घटनाक्रम का लेखा जोखा भी आत्मकथा की रेखांकित करने योग्य विशेषतायें है। पाण्डेय बैचेन शर्मा 'उग्र' की आत्मकथा, 'अपनी खबर' सिर्फ स्वयं की होकर वह सामाजिक जीवन की गाथा है। सत्यता की इतनी प्रखर अभिव्यक्ति यह उग्र जी की ही विशिष्टता हो सकती है।

तीस वर्ष की आयु में भोगे हुये अनुभवों की एक व्यापक निधि बिस्मिल की आत्मकथा में आर्यवत समाज की मूल्यवत्ता के प्रभाव से लेकर क्रांतिकारी मार्ग के दिव्य आचरण का अद्भुत विवेचन इस आत्मकथा की सौन्दर्य छटा है। इस प्रकार आत्मकथा साहित्य में समाजिक जीवन का, चरित्रों एवं घटनाक्रमों के आधार पर वर्णन मिलता है। इस संबंध में यही कहा जा सकता है कि हमारे जीवन मूल्यों के मानदण्ड इन आत्मकथाओं के आधार पर निर्धारित किये जा सकते है। परम्परागत जीवन मूल्यों की ओर भी देखने की दृष्टि में भी परिवर्तन हो रहा हैं। अतः आत्मकथायें नये मूल्यों के निर्धारण में प्रेरणा उद्बोधन, एवं सहायक सिद्ध हो सकती है। भारतीय सामाजिक जीवन के बहुविध परिवर्तनों की स्थितियों एवं कारणों का सम्यक अध्ययन भी इस साहित्य के द्वारा सहज संभव है। यही उपादेयता इन आत्मकथाओं के अनुशीलन की है।

एक तथाकथित आत्मकथा की समीक्षा करते हुए विष्णु प्रभाकर ने एक वाक्य लिखा था- हर जगह तराजू अपने पक्ष में झुकी हुई है जो स्वभावतः आत्मकथा में होता है। क्यो उससे बचने के प्रयत्न का एक रूप यह नही है कि आत्मकथा में मात्र 'मैं' ही न रहे 'सब' रहें यानी वह व्यक्ति की कहानी रह कर भी युग की कहानी बने। लेकिन उसमें एक खतरा भी है। अगर 'मैं' के निर्माण में युग की गाथा का कोई योग नहीं है तो आत्मकथा मात्र इतिहास बन कर रह जाएगी।"१९ उपर्युक्त कथन आत्मकथा की सत्यता व स्पष्टता को प्रकट करता है। साहित्य से जीवन दर्शन होता है, युगीन वास्तविकता तथा सामाजिक स्थिति का बोध होता है। चूकि आत्मकथाकार स्वयं समाज में रहता है। सामाजिक जीवन व्यतीत करता है। इसलिये आत्मकथा में उसके स्वतन्त्र अस्तित्व के अलावा सबसे बड़ा भाग सामाजिक दस्तावेजों का होता है। आत्मकथाकार सामाजिक चेतना का केन्द्रबिन्दु होता है। इसलिये आत्मकथा में असंदिग्ध स्वायत्तता के बावजूद साहित्य का सामाजिक मूल्यों के साथ घनिष्ठ संबंध होता है। स्पष्ट है आत्मकथाकार और समाज के बीच एक अनिवार्य तथा आंतरिक संबंध है। अतः साहित्य की प्रत्येक विधा की तरह आत्मकथा में भी समाज उसका आधार भूमि, प्रस्थान बिन्दु और लक्ष्य बिन्दु है। फिर चाहे वह किसी विशेष विषय पर हो या किसी विशिष्ट दृष्टि की ओर इंगित करती हो किन्तु उसमें सामाजिकता अनिवार्य रूप में होती है। जैसे कृश्न चन्दर लिखते है - "हर तस्वीर हर लेख या हर जिंदगी इस काबिल नही होती कि अमर कहलाए। हाँ, लेकिन...हर जिंदगी अपनी जगह पर इतनी जरूरी और खास जरूर होती है कि अगर वह किसी इतिहास, किसी तस्वीर या किसी लेख में विशेषता न भी प्राप्त कर पाए, केवल एक दिल में, किसी एक ख्याल में किसी एक भावना में, किसी एक कल्पना में या किसी एक क्षण में अपनी छाप या छाया छोड़ जाये तो उसे असफल या अर्थहीन नहीं कहा जायेगा।"२० रामदरश मिश्र अपनी आत्मकथा की विशिष्टता का उल्लेख करते हुये लिखते है- "मैं एक सामान्य व्यक्ति हूँ। मेरे जीवन में ऐसा कुछ नहीं है जो पाठकों को महान, असामान्य और बहुत मूल्यवान लगे। इसलिये मात्र अपनी कहानी कहना दंभ ही होता लेकिन मैंने जिस परिवेश की कहानी कही है और परिवेश के साथ व्यक्ति के जिन संबधों की कथा कही है वे निश्चित ही मूल्यवान है।"२१

आत्मकथा में सामाजिकता का प्राधान्य रहने का कारण यही रहा हैं कि अपने चारों ओर फैले परिवेश के दबाव को प्रत्येक नया संवेदनशील लेखक सहता है, भोगता है कभी चाहे कभी अनचाहे, वह विक्षुब्ध हो उठता है। फलस्वरूप उसका मन प्रतिक्रियात्मक हो जाता है और वह उसे औरो के सम्मुख उजागर करने पर विवश हो जाता है। चाहे वह अच्छी घटनायें हो या बुरी। आत्मकथा के सामने सत्यता व ईमानदारी के अलावा अन्य कोई पर्याय नहीं रहता। जब एक लेखक आत्मकथा लिखने बैठता है तो उसके सामने सिर्फ वह स्वयं ही नही रहता उसके साथ जुड़े अन्य लोग भी उसके साथ होते है, जिसके बिना आत्मकथा का कोई औचित्य ही नहीं रहता। इस तरह लेखक परिवार, फिर समाज और फिर देश व विश्व से जुड़ता चला जाता है। इस संबंध में डॉ. देवराज उपाध्याय का कथन दृष्टव्य है।-

जब आत्मदर्शन करने चलता हूँ तब जगप्रदर्शन होने लगता है अर्थात एक सर्वप्रथम अनुभूति या स्मृति को खोजने लगता हूँ तो एकाधिक स्मृतियां सामने आ जाती हैं।"२२

कविवर पंत के शब्दों में-

"जग मग जग मग नभ का आंगन
लद गया कुन्द कलियों से घन,
यह आत्म और यह जगदर्शन।

मनुष्य सामान्यतः अन्तर्जगत की ओर अधिक उन्मुख हो रहा है तथा अपने कार्य के प्रति अधिक सजग होता जा रहा है। जो श्रेष्ठ कलाकार अपनी संवेदनशीलता के कारण समसामयिक विचारधारा की लहरों से प्रभावित है, वे निःसन्देह आत्मकथा-लेखन अनिवार्य मानते हैं। आत्मकथाकार में सामाजिक दायित्व बोध इतना अधिक होता है कि वह अपनी शर्म, लज्जा छोड़ अपने जीवन की प्रत्येक सत्यता को उजागर करने में नही हिचकिचाता (चाहे वह फिर उसके या उसके घर के, पड़ोस के, दोस्त के या समाज के किसी हिस्से की कोई भी अच्छी, बुरी घटनायें हो), जैसे कमलादास ने अपने पुरखो, बुजुर्गो का रहन सहन, रूढ़िवादिता, नाजायज संबंध यहां तक कि अपने पति के समलिंगी व नाजायज संबंध का उल्लेख करने में भी नहीं चूकी। फिल्म अभिनेत्री हंसा वाडकर तो समाज से न डरते हुये जिस साहस व उदारता से फिल्म जगत, समाज व अपने जीवन का कच्चा-चिट्ठा प्रस्तुत किया तथा अपनी जिंदगी में झेली शर्म की सारी परतों को खोल कर रख दिया है। जो उस पर लादी गई थी या जिसमें वह स्वयं भी शरीक थी। इसी तरह लेखिका अमृता प्रीतम ने भी अपने जीवन से संबंधित समस्त घटनाओं को चाहे वह परिवार से संबंधित है, समाज से संबंधित हो या उनके प्रेमियों के संबंध में हो सबकी सत्यता को उजागर किया है।

आत्मप्रकाशन की विशेषता यही रही है कि कथाकार अपने लेखन द्वारा समाज को कुछ दे या न दे उसकी गलतियों और संकीर्णताओं को आगे सुधरने की दिशा जरूर दे सकता है। यह स्वतन्त्र और ईमानदार समाज के निर्माण मे सहायक भी हो सकता है। किसी व्यक्ति की जिंदगी अथवा समाज की दिशा देने के लिये आत्मकथाएं समाज को बदलने या संभलने का ज्यादा मौका दे सकती है। इसलिये जो लोग समाज की व्यवस्था के कारण अपना निर्णय खुद न ले सकने में जिंदगी से जूझते है और सफल या

असफल होते हैं ऐसे लोगों की आत्मकथा ज्यादा सार्थक सिद्ध होती है। जैसे शंकरराव खरात, जो कि मराठी के मान्यवर साहित्यकार है। व दलित समाज के होने के कारण उन्हें मानव निर्मित मानवता रहित विषम परिस्थितियों से गुजरना पड़ा। अपने भोगे हुये यथार्थ तथा अपने जीवन पट का जीवंत आत्म-साक्षीकृत आलेख उन्होंने अपनी आत्मकथात्मक रचना 'तराल-अंतराल' में लिखा है। यह समाज को समाज के की नग्न हकीकत से अवगत कराता है। यह आत्मकथ्य समाज को सोचने के लिये मजबूर भी कर देता है। उन्होंने कहा है कि- "आज तक मेरी जीवन यात्रा भले ही कष्ट-कंटकों में होकर गुजरी है; किन्तु अब अंधकार को भेदकर प्रकाश की किरणें दिखायी देने लगी है।"२३

आत्मप्रकाशन में हम जीवन के सुख-दुख को तय करती आयी ठोस सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों तथा शक्तियों और उनसे अपने संबंधो की प्रकृति को उजागर करते है। इस माध्यम से हम अपनी आस्था और अध्यव्यवसाय को हम अपने संवेदनात्मक विवेक की कसौटी पर परखते है। चूँकि यह कसौटी सामाजिक संसर्ग में निर्मित होती है इसलिये आत्मप्रकाशन का समाज को मुखातिब होना लाजिमी है। उसके साथ हम अपने दुख और खुशियाँ, अपने साहस और भय, अपने पुरूषार्थ और पराभव, अपनी प्रतिमा और असहायता को बांटना चाहते हैं। इस तरह हम अपनी क्षुब्ध और उद्धेलित चेतना को कुछ राहत तो दे ही पाते है, अपने आप से एक व्यापक और सजग संवाद में भी शरीक होते है। जैसे कमलेश्वर के शब्दों में - "मेरे लिये यह दौर मात्र शब्दों के संघर्ष का दौर नही, बल्कि शब्द के मानवीय अर्थ को जीवित रख सकने की कोशिश का दौर भी था... मैं सोचता था कि शब्द क्या सिर्फ साहित्य के लिये है? क्या मुझे शब्द की शक्ति को सिर्फ महान लेखकों की परम्परा में ही इस्तेमाल करना है? क्या ये शब्द मेरा और मेरे दौर के यथार्थ का साथ नहीं दे सकते?"२४

आत्मकथा भोगे हुये सच और जीवन के अनुभवों का संकलन है। इसलिये जिंदगी काफी हद तक जी लेने के बाद ही वे सार्थक हो सकी है। निज का पूरा पूरा परिचय सच्चा ज्ञान है। और अहम् का सम्यक विस्तार वेदान्त और ब्रह्मवाद का सच्चा व्यवहारिक रूप हैं। परन्तु अपने को देख सकना और समझ सकना सरल नही है और दिखा सकना और समझा सकना उससे अधिक कठिन है। भविष्य को सुन्दर बनाने के लिये वर्तमान भूत का कैसा उपभोग करता है यह इतिहास की कला है। कलाकार अपनी तरकीब, अपनी व्यवस्था, अपना प्रकाश जिसे साहित्यिक भाषा में सौन्दर्य कहते है, समस्त कृति के निर्माण में साधे रहता है। मुंशी प्रेमचन्दजी समझ रहे थे कि वह सिर्फ अपने लिये नहीं, अपने जैसे और भी न जाने कितने लोगो के लिये लड़ रहे हैं जो गुमनाम है, मगर जिन्होने आँखे खोलकर किसी बड़े आदर्श के लिये सच्चा कष्ट सहा है और जिनके पास कुछ कहने को है- "बड़े-बड़े लोगों के अनुभव बड़े-बड़े होते हैं, लेकिन जीवन में ऐसे कितने ही अवसर आते है जब छोटों के अनुभव से ही हमारा कल्याण होता है। 'सुई की जगह तलवार नहीं' काम दे सकती।.. मेरा खयाल है कि मेरे घर के मेहतर के जीवन में भी कुछ ऐसे रहस्य है जिनसे हमें प्रकाश मिल सकता है।.... किसी भी मनुष्य का जीवन इतना तुच्छ नही है। जिसमें बड़े से बड़े महच्चरितों के लिये भी कुछ न कुछ विचार की सामग्री न हो।" २५

सन्दर्भ ग्रन्थ -

१. रसीदी टिकिट -अमृता प्रीतम, पृ. १०२
२. मेरी कहानी -पंडित जवाहरलाल नेहरु, पृ. १५
३. साहित्कारों की आत्मकथा - देवव्रत, पृ. ४
४. सिंहावलोकन भाग -३ - यशपाल, पृ. ६
५. आत्मकथा या अहिंसा के अनुभव - हरिभाऊ उपाध्याय, पृ. २
६. और पंछी उड़ गया- विष्णु प्रभाकर, पृ.१४४
७. बचपन के दो दिन - देवराज उपाध्याय, पृ. १०
८. आत्मकथा - राजेंद्र प्रसाद, पृ. ८०८
९. सत्य के प्रयोग - महात्मा गाँधी, पृ.११
१०.पंखहीन - विष्णु प्रभाकर, पृ. ७१
११. मेरा जीवन वृतांत - मोरारजी देसाई, पृ. ५
१२. भूली बातें याद करु - रामकृष्ण बिरला, पृ. २२
१३. श्वेत कमल -रविंद्र , भूमिका से
१४. मेरा जीवन प्रवाह - वियोगी हरी, पृ. ४
१५. मेरी मुक्ति की कहानी - टालस्टाय, भूमिका से
१६. बचपन के कुछ संस्मरण - काका कालेकर, पृ १
१७. गर्दिश के दिन - कमलेश्वर पृ. १६-१७
१८. पंखहीन - विष्णु प्रभाकर -पृ. ७१
१९. मुक्त गगन में - विष्णु प्रभाकर, पृ. ३२,३३
२०. आधे सफर की पूरी कहानी -कृष्ण चन्दर, पृ. ६
२१. जहाँ मैं खड़ा हूँ - रामदरश मिश्र, पृ. अपनी ओर से
२२. बचपन के दो दिन - डॉ. देवराज उपाध्याय पृ. १३९
२३. तरल अंतराल - शकरराव खरात पृ.२३६
२४. यादो के चिराग - कमलेश्वर पृ.१७
२५. कलम का सिपाही - अमृतराय पृ. ४६५